

वेद-पुराण-साहित्य-साहित्यशास्त्र-व्याकरण-दर्शन-ज्योतिष-भारतीय
संस्कृति आदि विविध विषयों पर विषय-विशेषज्ञ पृथग्य
विद्वानों के शोध-आलेखों का उत्कृष्ट संग्रह

शाश्वती

डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय स्मृतिग्रन्थ

Sāśvatī

Dr. Santosh Kumar Pandey Commemoration Volume



सम्पादक मंडल

शैलेश कुमार मिश्र • कंजीव लोचन
धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी • अवधेश कुमार पाण्डेय

© सर्वाधिकार सुरक्षित : इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रॉनिक, सांख्यिक, योशरी प्रतिलिपि, डिजिटल या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे तंत्र में प्रयोग, जिससे इसे पुनः प्रकाशित किया जा सकता हो, सार्वजनिक मंडल की पूर्वाधिकार अवधि के बिना नहीं किया जा सकता है।

इस स्मृतिग्रन्थ में प्रकाशित आलेख सम्बद्ध लेखकों के किसी विचार हैं। किसी विचार की विधिति में उत्पन्न सम्बन्ध स्मृतिग्रन्थ सम्बद्ध लेखक का होता है। सार्वजनिकरण एवं प्रकाशन इसके लिए जिम्मेदार नहीं होंगे।

शाश्वती-डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय स्मृतिग्रन्थ

ISBN : 978-93-94829-29-9

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स नं. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542 2335263, 2335264

e-mail : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

 @chaukhambabooks

 @chaukhambabooks

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2022

₹ 4995.00

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली नं. 21-ए

अंसारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11 23286537, 41530947 (मो.) +91 9811104365

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

4360/4, अंसारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स नं. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक : ए.के. लियोग्राफर, दिल्ली

स्मृतिग्रंथ प्रकाशन समिति

संरक्षकमण्डल

- प्रो. (डॉ.) तपन कुमार शांडिल्य
प्रो. (डॉ.) जय नारायण पाण्डेय
प्रो. (डॉ.) नन्हकू राम दूबे
डॉ. नीलिमा पाठक
डॉ. राम कुमार पाठक
डॉ. नमिता सिंह

परामर्शदात्री-समिति

- प्रो. (डॉ.) हरिदत्त शर्मा
प्रो. (डॉ.) अर्कनाथ चौधरी
प्रो. (डॉ.) सन्तोष कुमार शुक्ल
प्रो. (डॉ.) श्रीप्रकाश पाण्डेय
प्रो. (डॉ.) धनञ्जय पाण्डेय
प्रो. (डॉ.) उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी
प्रो. (डॉ.) विष्णुकान्त पाण्डेय
प्रो. (डॉ.) प्रसून दत्त सिंह
प्रो. (डॉ.) रत्नेश विष्वक्सेन
प्रो. (डॉ.) बलराम शुक्ल
प्रो. (डॉ.) प्रयाग नारायण मिश्र
डॉ. शैलेश कुमार तिवारी
डॉ. शरदिन्दु कुमार त्रिपाठी

प्रधान सम्पादक

डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. कंजीव लोचन

डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय

सम्पादक

डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

प्रकाशनसमिति

- श्री कमलेश वैद्य
श्री मलय समीर
श्री सतीश कुमार
श्री संजय कुमार
श्रीमती नमिता तिवारी
डॉ. किरण झा
डॉ. शालिनी लाल
डॉ. अभय कृष्ण सिंह
डॉ. विनय भरत
डॉ. अनिर्बान साहू
डॉ. अभय सागर मिश्र
श्री मनोजीत प्रसाद
डॉ. जितेश पासवान
श्री जगदम्बा सिंह
श्री राहुल कुमार
सुश्री सोनी उराँव
श्रीमती श्वेता भारती
श्री गोपाल कृष्ण दूबे
श्री अमिताभ कुमार

धर्मशास्त्रविमर्श

- | | |
|--|-----|
| 81. धर्मशास्त्र में वर्णित भारतीय न्याय प्रक्रिया - प्रो. मन्तोष कुमार शुक्ल | 547 |
| 82. स्मृति निरूपित दण्ड विधान एवं उसकी प्रासंगिकता - डॉ. हिमाशुशेखा त्रिपाठी | 557 |
| 83. अविभाज्यधनानि - डॉ. मीनाक्षी मिश्रा | 563 |
| 84. विश्व में मनुस्मृति की प्रासंगिकता - डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय | 572 |
| 85. स्मृतियों में शैक्षिक पर्यावरण - डॉ. प्रबोध कुमार पाण्डेय | 575 |
| 86. धर्मशास्त्रों में आपद्धर्म - रश्मि मिश्रा | 578 |

ज्योतिषशास्त्रविमर्श

- | | |
|---|-----|
| 87. ज्योतिष का वेदाङ्गत्व : एक अनुशीलन - प्रो. भारतभूषण मिश्र | 592 |
| 88. वास्तुशास्त्रसम्मत द्वारविन्यास - डॉ. अशोक थपलियाल | 599 |
| 89. गणित की उन्नति में लीलावती का अवदान - डॉ. सुनील गुर्ग | 608 |
| 90. Astrology and human health
(According to Prasnamarga)- Dr. Jitesh Paswan | 612 |

साहित्यविमर्श

- | | |
|--|-----|
| 91. काव्यकृति के संदर्भ में - कालिदास तथा कबीर : एक विमर्श - प्रो. कमलेशकुमार छ. चौकसी | 616 |
| 92. अभिज्ञानशाकुन्तल : पाठभेद-जनित दृश्यपरिवर्तन - प्रो. वसन्तकुमार म. भट्ट | 624 |
| 93. संस्कृत साहित्य में प्रेमतत्त्व - प्रो. रमाकान्त पाण्डेय | 635 |
| 94. किं श्रीहर्षो मिथिलानिवासी? - डॉ. उदयनाथ झा 'अशोक' | 666 |
| 95. Cultural and Political Elements Noticed in
the <i>Prasannarāghava</i> - Dr Kameshwar Shukla | 673 |
| 96. कुमारसम्भव-वामनपुराणयोः कथासाम्यम् - डॉ. शरदिन्दुकुमार त्रिपाठी | 680 |
| 97. कालिदास के काव्यों में संस्कार : वर्तमान उपादेयता - डॉ. रुबी | 688 |
| 98. संस्कृत साहित्य में मानव के समग्र विकास की अवधारणा - डॉ. शशिकांत पाण्डेय | 697 |
| 99. साहित्यस्य लोकमङ्गलकारिता - डॉ. शैलेश कुमार मिश्र | 701 |
| 100. कालिदास की पर्यावरण चेतना : अभिज्ञानशाकुन्तल के आलोक में - डॉ. श्याम कुमार झा | 711 |
| 101. शुक्रनासोपदेश की साम्प्रतिक प्रासंगिकता - प्रमोद कुमार | 720 |
| 102. मुद्राराक्षस में भ्रम्यन्तर कथन - डॉ. उषा किरण | 723 |
| 103. कुमारसंभवम् महाकाव्य में करुण रस का विवेचन - डॉ. हिमावती बिन्हा | 727 |
| 104. कालिदास का चित्रकला-वैदुष्य - डॉ. लाडली कुमारी | 733 |
| 105. कालिदासीय काव्यों में बिम्ब-विधान - डॉ. धनञ्जय कुमार मिश्र | 738 |
| 106. मेघे प्राघे गतं वयः - डॉ. धनञ्जयवासुदेवो द्विवेदी | 748 |
| 107. मृच्छकटिक में स्त्री चरित्र - डॉ. मनीषा कुमारी पाण्डेय | 762 |
| 108. चारुदत्तमृच्छकटिकयोः आधारार्थेयत्वम् - डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय | 766 |
| 109. अष्टाध्यायी के काव्यों में योग का स्वरूप - डॉ. श्रीमित्रा | 769 |
| 110. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते - डॉ. शिशिर कुमार पाण्डेय | 772 |

अविभाज्यधनानि

डॉ. मीनाक्षी मिश्रा

भारतवर्षे विचारितेषु विभिन्नेषु शास्त्रेषु धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं प्राशस्त्यश्च सुविदितचरम्। वैदिककालादनन्तरं प्रादुर्भूतेषु त्रिविधेषु स्मृतिसूत्रनिबन्धात्मकेषु धर्मशास्त्रसाहित्येषु प्रामुख्येनैवाचार-व्यवहार-प्रायश्चित्तविषया विचारिताः दृश्यन्ते।

आचारभागे वर्णधर्माश्रमधर्मवर्णाश्रमधर्मसाधारणधर्माणां, व्यवहारभागे गुणधर्माणां, प्रायश्चित्तभागे च निमित्तधर्माणां विचारः कृतो वर्तते। गुणधर्ममध्ये अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो धर्मोऽन्तर्भवति। अतो गुणधर्मो राजधर्म एव। राज्ञः प्रजापालनं परमो धर्मः। दुष्टानां निग्रहं विना प्रजापालनं सम्यक् कर्तुं न शक्यते। दुष्टपरिज्ञानं विना च तेषां निग्रहो वा कथं सम्भवेत्। अतस्तत् परिज्ञानं व्यवहारं विना न सम्भवति। अतो राज्ञो धर्मेषु व्यवहारं विना न सम्भवति। अतो राज्ञो धर्मेषु व्यवहारदर्शनं मुख्यं भवति। उक्तञ्च-

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिव।

मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्॥¹

मनूपदिष्टादस्माद् वचनाद् व्यवहारान् स्वयं सम्भैः परिवृतोन्वहं पश्येत्। याज्ञवल्क्योक्तवचनाद् व्यवहारदर्शनं राज्ञः परमकर्तव्यत्वेन परिगणितं भवति। स च व्यवहारः कीदृशः, किं तस्य लक्षणं, कानि च तस्य पदानि इत्यादिनि मनुयाज्ञवल्क्यादिभिः स्व-स्मृतिषु प्रतिपादितानि। मनूक्त-अष्टादशव्यवहारपदेषु दायभागोऽन्यतमः।

धर्मशास्त्रे व्यवहारः वादि-प्रतिवादिकर्तृकविवादस्यार्थे व्यवहियते। विधिवाचको व्यवहारः, कौटिल्यार्थशास्त्र-मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृति-शुक्रनीति-कामन्दकीयनीतिसार-नीतिवाक्यामृतादिग्रन्थेषु व्यवहारशब्दो विध्यर्थे रूढः। अत एव व्यवहारन्यायालयादीनां समुल्लेखः। व्यवहारमयूखे व्यवहारलक्षणं प्रतिपादितं यथा-

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाऽऽधर्षितः परैः।

आवेदयाति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्॥²

अस्यायं भावः यत् स्मृतिप्रतिपादित-आचाररहितेन मार्गेण कार्येण उपायेन वा परैः, अन्यैः आधर्षितः तिरस्कृतः प्रताडितो वा जनो यद् राज्ञे न्यायधीशाय न्यायप्राप्त्यर्थं वेदयति याचते तद् व्यवहारवाच्यम्।

अमरकोषे व्यवहारलक्षणम्-

विवादः व्यवहारः स्यात्।¹

विरुद्धो वादः विवादः।

कात्यायनः-

‘वि’ नानार्थे ‘अव’ सन्देहे ‘हरणं’ हार उच्यते।

नानासन्देहहरणाद्व्यवहार इति स्मृत इति।²

नानाभेदेषु विभक्तेषु व्यवहारपदेषु मनुक्ताष्टादशव्यवहारपदेषु च ‘विभागश्च’ इति पदेन दायभागोऽन्यतमः। अयं दायभागः पितृधनस्य तत्सम्बन्धीयस्य वा धनस्य तत्सम्बन्धीयेषु विभाग एव। उक्तञ्च विज्ञानेश्वरेण यत्-

दायशब्देन यद्भूतं स्वामिसम्बन्धादेवान्यस्य स्वं भवति तदुच्यते।³

नारदेन उक्तञ्च-

विभागोऽर्थस्य पितृस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते।

दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः।⁴ इति

विभागेन एव स्वत्वमागच्छति। तेन च यथेष्टविनियोगार्हत्वम्। मनुश्च “पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्भूम्या पृथक्क्रिया”।⁵ इत्युक्त्वा विभागस्य महत्त्वं प्रतिपादयति। अतस्तस्मादस्त्येव दायभागस्य महद् योगदानमिति विपश्चितामैकमत्यम्। विज्ञानेश्वरमतेन स च दायः द्विविधः। अप्रतिबन्धः सप्रतिबन्धश्चेति।

अप्रतिबन्धदायः-

पुत्राणां पौत्राणां च पुत्रत्वेन पौत्रत्वेन च पितृधनं पितामहधनं स्वं भवतीत्यप्रतिबन्धो दायः।

सप्रतिबन्धदायः-

पितृव्यभ्रात्रादीनान्तु पुत्राभावे स्वाम्यभावे च स्वं भवतीति सप्रतिबन्धो दायः इति।

विभागलक्षणम् - “विज्ञानेश्वरमते विभागो नाम द्रव्यसमुदायविषयाणाम् अनेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनमिति विभागः”।⁶

जीमूतवाहनमते एकदेशोपात्तस्यैव भूहिरण्यादावुत्पन्नस्य स्वत्वस्य विनिगमनाप्रमाणाभावेन वैशेषिकव्यवहारानर्हतया अव्यवस्थितस्य गुटिकापातादिना व्यजनं विभागः। “विशेषेण भजनं स्वत्वज्ञापनं वा विभागः”⁷ इति।

अस्माकमस्मिन् शास्त्रपरम्पराप्रचलितवाहिनिसंसारे शास्त्रणामनुसारं धनसमूहो विभाज्याविभाज्यत्वेन विभज्यते। तस्मादेव धनसमूहाद् अविभाज्यधनविषये विचारोऽत्र क्रियते। अविभाज्यधनविषये याज्ञवल्क्यमतं दीयते यथा-

पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत्स्वयमर्जितम्।

मैत्रमौद्राहिकञ्चैव दायदानां न तद्भवेत्।⁸

क्रमादध्यागतं द्रव्यं हतमप्यद्वारे तु यः।

दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव वा।⁹ इति

याज्ञवल्क्यवचनाभ्यां मातापित्रोर्द्रव्याविरोधेन, मैत्रेण, उद्वाहेन पूर्वापहतोद्भूतेन, क्रमादध्यागतेन, विद्यादिना

च यद्वनं स्वात्मनार्जितं तत्सर्वमविभाज्यमेव। अत धनेषु पूर्वं क्रमागतं भूम्यादिकं पूर्वनष्टं यदि कश्चन उद्धरति, तर्हि, उद्धर्त्रे चतुर्थांशमुद्धारं दत्त्वावशिष्टं सर्वे समं विभजेरन्निति।

पूर्वं नष्टं तु यां भूमिमेकश्चेदुद्धरेत्क्रमात्।

यथाभागं लभन्तेऽन्ये दत्त्वांशं तु तुरीयकम्॥¹²

अत्र शङ्ख वचनोदाहरणेन विज्ञानेश्वरजीतमूतवाहनयोरैकमत्यम्।

शौर्यभार्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत्।

श्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः॥¹³

इति नारदवचनेनापि युद्धेन, भार्याग्रहणेन, विद्याया, वेदाध्ययनेनाध्यापनेन वेदार्थव्याख्यानेनार्जितानि धनान्यप्यविभाज्यानीति सुस्पष्टम्। एतसर्वं पितृद्रव्यानुपधातात्।

पितृद्रव्याविरोधेन यत्किञ्चित्स्वयमर्जितम्।

मैत्रमौद्वाहिकश्चैव दायदानां न तद्भवेत्॥¹⁴

इति याज्ञवल्क्यस्मरणात् पितृद्रव्याविरोधेन स्वकीयश्रमेणोपार्जितधनविषयकम्।

विभागात्पूर्वं वस्त्रवाहनालङ्कारादयो येन व्यवहृतः स एव तस्य, नैतदन्यैर्विभाज्यम्। परन्तु यदि अधिकं स्यात्तर्हि विभक्तव्यमेव। विषयेऽस्मिन् मनोर्वचनमस्ति-

वस्त्रं पत्रमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।

योगक्षेमं प्रचारश्च न विभाज्यं प्रचक्षते॥¹⁵

इति वचनात् पूर्वोक्तवस्त्रादीनि योगशब्देन श्रौतस्मार्ताग्निसाध्यम् इष्टकर्म लक्ष्यते। क्षेमशब्देन बहिर्वेदिदानतडागारामनिर्माणादिकर्म लक्ष्यते। प्रचारशब्देन गृहारामादिषु प्रवेशनिर्गममार्गो बोध्यते। ते सर्वेऽप्यविभाज्याः।

वस्त्रालङ्कारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम्।

गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे समर्पयेदिति॥¹⁶

बृहस्पतिवाक्यात् पितृधृतवस्त्राणि तस्योर्ध्वं विभजतां श्राद्धभोक्त्रे देयानीति ज्ञायते। जीवति पत्यौ स्त्रीभिर्धृता अलङ्कारा अविभाज्याः। यो यया धृतः स तस्या एव।

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत्।

न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते॥¹⁷ इति

मनुवचनादेव पूर्वोक्तानामविभाज्यत्वं सिद्धयति, तेषामभावे प्रतिषेधश्रवणात्। द्रव्येण विषमाणि चेद्विभागेऽधिकं ज्येष्ठस्येति मनुना निगदितम्-

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत्।

अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते॥¹⁸

इति स्त्रियः दास्यादयश्च विषमांशेत् पर्यायेण कर्म कारयितव्यम्। उदकमुदकधारः कूपादि, तच्च विषममूल्यद्वारेण न विभाज्यमपि पर्यायेणोपभोक्तव्यम्। अवरुद्धास्तु पित्रा स्वरिण्याद्याः समा अपि पुत्रैर्न विभाज्या भर्त्रा प्रीतेन यद्वत्तमिति नारदवचनात् स्थावराद् व्यतिरेकेण सर्वं प्रीतिप्रसादादिकं धनं भर्त्रा

पित्रादिना विभाज्यामिति विज्ञानेश्वरः।

जीमूतवाहनस्यापि मतानि प्रायशः विषयेऽस्मिन् विज्ञानेश्वरमततुल्यानि सन्ति।

यदि सर्वसाधारणीभूतं द्रव्यमाकुलीकृत्य कश्चन किञ्चिद्गुणमर्जयति तत्रेतोषां भ्रातृणां भागः।

पैतामहात् पित्र्यं यच्चान्यत्स्वयमर्जितम्।

दायादानां विभागे तु सर्वमेतद्विभज्यते।¹⁰

कात्यायनवचनादस्मात् पैतामहादिधनव्ययार्जिते धने दायादानां समेषामधिकारः प्रदर्शितः, तस्य धनस्य साधारणधनत्वात्। तत्रापि यस्य यावतोऽशस्य स्वल्पस्य महतो बोधघातः तस्य तदानुसारेण भागकल्पना कार्या तत्र पुनरर्जयितुरंशद्रव्यमन्येषां स्वभागानुसारमिति।

साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद् वाहनयुधम्।

शौर्यादिनाप्नोति धनं भ्रातरस्तत्र भागिनः।।

तत्र भागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः।¹⁰

इति व्यासवचनानुसारं प्रतिपादितं यत् साधारणद्रव्येणार्जितस्य धनं सवैर्विभक्तव्यमिति।

पुनश्च यदि कस्यचन जनस्य द्वौ पुत्रौ आस्ताम्, तयोः कश्चन स्वधनव्ययाद् विद्याध्ययनार्थं गृहं परित्यक्तवान्। तदानीं यो गृहेऽऽसीद्, यद्यध्ययनार्थं गतस्य भ्रातुः कुटुम्बं विभृयादर्थद् विद्यामभ्यसतो भ्रातुः कुटुम्बं स धनव्ययं कृत्वा वर्धयति, तदा तद्विद्योपाजितधने तस्याप्यधिकारः। यथोक्तं नारदेन-

कुटुम्बं विभृयाद् भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः।

भागं विद्याधनात्तस्मात् स लभेताश्रुतोऽपि सन्।¹¹

किन्तु पित्र्यपदं साधारणधनपरत्वेऽपि यदि केनापि तदनाश्रित्य धनमर्जितं तर्हि वैद्योऽविद्याय अनिच्छन्न दद्यात्, वैद्याय विद्याविशिष्टाय विदुषे साधारणमन्तरेणाप्यर्जितं दद्यात्।

वैद्योऽविद्याय नाकामो दद्यादंशं स्वतो धनात्।

पित्र्यं द्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितम्।¹² इति

नारदवचनात् श्रूयते। अतः साधारणद्रव्यं समाश्रित्य व्ययीकृत्यार्जितविद्याधने विद्यानुपालितानां यवीयसां भ्रातृणां भागो नाविद्यापालितानामिति जीमूतवाहनदिशा कश्चन विशेषः।

यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।

भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः।¹³ इति।।

मनुवचनात् पुत्रार्जितेऽविदुषामधिकारः। ज्येष्ठार्जिते पुनर्विदुषामधिकारः इत्ययं भेदः। अपरञ्च प्रकारान्तर्गण यानि शौर्यप्रसादलब्धधनानि सन्ति, तान्यप्यविभज्यानि। अतो विषयमेनमाधारीकृत्य कात्यायनस्य कानिचिद्गुणानि दृष्टान्तत्वेन दीयन्ते-

आमृष्टं सशयं यत्र प्रसवं कर्म कुर्वते।

तस्मिन् कर्मणि तुष्टेन प्रसादः स्वामिना कृतः।¹⁴

तत्र लब्धन्तु यत्किञ्चिद्गुणं शौर्येण तद्भवेत्।

ध्वजाहृतं भवेत् यत्तु विभाज्यं नैव तत्समुत्तमम्।¹⁵

संग्रामादाहतं यनु विजित्य द्विषतां बलम्।

स्वाम्यर्थे जीवितं त्यक्त्वा तद्ब्रज्राहतमुच्यते॥

वैवाहिकन्तु तद्विद्याद्वार्यया यत् सहागतम्॥²⁶

इत्येतानि पूर्वोक्तानि धनान्याविभाज्यानीति जीमूतवाहनस्याशयः।

अत्र विषयेऽस्मिन् स्त्रीधनविभागक्रमपरके प्रसङ्गे विज्ञानेश्वरजीमूतवाहनयोर्मतानि प्रायशः सादृश्यपरकाणीति परिलक्ष्यते। परन्तु कुत्रचित् स्थलविशेषे जीमूतवाहनमतमधिकरुचिकरं कचिद् वा विज्ञानेश्वरस्येति वक्तुं शक्यतम्।

पुनश्चापि कृत्यकल्पतरौ पित्रादिक्रमागतं द्रव्यं विभागकाले विच्छिन्नभागविभक्तः सन्नितरदायादानुमतः 'स्वशक्त्या यदभ्युद्धरेत्' स्वीकुर्यात् स तद्विभक्तजदायादेभ्यः पुनर्विभागकाले न दद्यादिति विश्वरूपः। क्रमादभ्यागतं पितृक्रमादागतं यत्किञ्चिदन्यैः हृतम्, असामर्थ्यादिना पूर्वपुरुषेणानुद्धतं यो द्रव्यमंशिनं मध्ये एक एवोद्धरति, तदंशयन्तरेभ्यो न दद्यात्। तत्र चाभ्यन्तराणामनुज्ञेयेति। अत्र चेदभिमतं, यदसाधारणधनेनैव प्रासाच्छादनाद्युपयोगं कृत्वा समाधिगतविधिः साधारणधनाश्रयेण विद्यमानं धनं प्राप्नोति, तदा अविद्याय न देयम्, साधारणधनाश्रयेण तु विद्यार्जितमविद्यायाऽपि देयम्। यदा तु विद्यार्जनकाले साधारणधनोपयोगेऽपि विदुषा न कस्यचिद्देयम्, किन्तु विदुष एव तद्धनम्²⁷ पितृद्रव्यार्जित-स्वाविभाज्यत्वमुक्त्वा पृथग्विद्यालब्धस्यापि व्यासेन विभाज्यत्वप्रतिपादनात्। योगक्षेमप्रचारादिकमप्यविभाज्यत्वेन गृहीतमनेन। एतत्परिभाषितविद्या शौर्यादिधनव्यतिरिक्तविद्याशौर्यादिधनाभिप्रायेण द्रष्टव्यमिति अत्रापवादमाह व्यासः।²⁸

शौर्यादिसाधारणोपायेनापि चेत्साधारणक्लेशेनार्जयति तदाऽर्जको द्वयंशभागित्यर्थः। ननु साधारणधनाश्रयेणापि विद्याशौर्यादिना यदार्जितं तदविभाज्यामिति प्रागुक्तमनेन विरुद्धयतीति चेन्न। तस्य कात्यायनादिविद्याशौर्यादिपरत्वादस्य तु तदितरप्रकारविद्योपष्टम्भमात्रपरत्वादिति स्त्रीधनविभागप्रसङ्गक्रमः।

पुनरपि महामहोपाध्यायो²⁹ वाचस्पतिमिश्रोऽपि प्रसङ्गेऽस्मिन् विज्ञानेश्वरमतं स्वीकरोति।

अपरश्चापि नीलकण्ठभट्टो³⁰ मिताक्षरां सम्मनुते। अपि च बालम्भट्टस्य³¹ मतानुसारमेतदेवास्ति यद् अविभाज्यधनेषु पितृद्रव्याविरोधेनेत्यस्य सर्वशेषत्वादेव यथा तद्विरोधेनोपार्जितानां विभाज्यत्वं तथा मैत्राद्यन्यत्वात्पितृद्रव्यविरोधेन प्रतिग्रहोपार्जितस्यापि न विभाज्यत्वमित्यर्थः। तस्य तदशेषत्वेन स्वातन्त्र्ये तु तत्रापि विरोधेनोपार्जिते विभाज्यत्वापत्तिरिति भावः।

ननु तथैवास्तु इति तत्र इष्टापत्तिरिति माऽस्तु तस्य तच्छेषत्वमिति स्वातन्त्र्यमेवास्तु ब्राह्मणवसिष्ठन्यायेन तस्य मित्रादिभिन्नपरत्वाभावाद् द्रव्ययुक्तम्। तस्य तदशेषत्वे किञ्चित्पदादिस्वारस्याद्यत्तविरोधेनार्जितं तत्सर्वमविभाज्यमिति।

ननु श्रुत्यादीनां पूर्वपूर्वप्राबल्यस्योक्तत्वेन वचनादाचारस्य दुर्बलत्वेनेदमयुक्तम्, आचारेण स्मृतिकल्पनेऽपि क्लृप्तस्मृतेर्झटित्युपपत्तेः प्राबल्यमेवेति चेन्न आशयानवबोधात्। न केवलमाचारविरोधोऽपि तु मैत्राद्यन्तर्गतविद्यालब्धविषये स्मृतिविरोधोऽपीत्याह, विद्याध्ययनकुर्वतो भ्रातुर्योऽस्य भ्राता तस्य कुटुम्बं पोषयति सोऽश्रुतोऽपि सन् वेदशास्त्राद्यध्ययनरहितो मूर्खोऽपि सन् तस्माद्विद्याधनान्तर्दार्जितविद्याया

लब्धधनाद्भागमंशं लभेतेत्यर्थः। यदि कथमप्यर्जितस्य विद्याधनस्य तत्त्वेनाविभाज्यत्वं मूलाभिमतं स्यात्तदा तद्वेतुकविभागकथनं नारदीये विरोधः क्रियते। तस्मात्तस्य स्वतो तादृशस्य विभाज्यत्वं विभाज्यत्वे किन्तु अविरोधेऽविभाज्यत्वं विरोधे विभाज्यत्वेन विरोधरूपमेव नारदेन हेतुत्वेनोक्तमिति सिद्धान्ते एकवाक्यता सिद्धा। मूलेऽपि त्रैयुपलक्षणम्। किन्तु यदि स्वभाविकी विद्याधनांशप्राप्तिर्नारदादिभिर्मता भवेत्तर्हि तस्य हेतुत्वोक्तिरनर्थका स्यात्। एवं च विद्याधनस्य यथा कथाश्चदर्जितस्य न स्वतो विभागार्हता। अन्यथा पितृद्रव्यविरोधेनार्जितस्याप्यविभाज्यत्वेऽप्राप्यविभाज्यत्वमेव उचितमिति विभागकथनस्यैवासङ्घर्षातिरिति भावः। अत एव कात्यायनेनोक्तम्-

नाऽविद्यानां तु वैद्येन देयं विद्याधनात्किञ्चित्।

समविद्याधिकानां तु देयं वैद्येन तद्धनम्।¹²

अयं च सिद्धान्तोऽविभाज्यत्वेन प्राप्तस्यापवादः। एवं च विद्याधनमन्यदपीति नारदादिविरोधो व्याख्यातुरिति बोध्यम्। तथा च पित्रादिद्रव्यविरोधे या विद्या तद्विन्ना लब्धा यत् प्राप्तं धनं तद्विद्याप्राप्तं धनं नान्यत् ईदृशमेवाविभाज्यम्, अतोऽन्यथा तु तद्विद्याधनमेव नेति तद्विभाज्यमेवेति भावः। अनुपघ्नन्नित्यत्र विभक्तविपरिणामेन तदनुपघ्नता यत् विद्याया रूपं लब्धं तत्पूर्वं चोभयमपि क्षयादेभ्यो न देयमित्यर्थेन पितृद्रव्यविनाशरूपविरोधाभावेन यद्विद्यालब्धं श्रमलब्धं च तदविभाज्यमिति सिद्धम्। मैत्रादिगणान्तर्गतविद्याधनस्य तथात्वात्तस्योपलक्षणत्वेन मैत्रदीनापि तथात्वमाविष्कृतमिति भावः।

मुनूना-

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रेणेन यदुपार्जयेत्।

स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामो दातुमर्हति।¹³

अत्र यत्किञ्चनमनोर्विपरीतं तस्यैव तात्पर्यम्। पितेव पालयेत्युत्रानिति मानवात्पितापुत्रवद्भावे तद्व्येष्टधने कनिष्ठाधिकारः। पित्रार्जितेऽविदुषामपि ज्येष्ठार्जिते तु विदुषामेवेति विशेषः। 'इदं च पितरि प्रेते इति ज्येष्ठ' इति 'तात्पर्यम्' इति विद्यानुपालित इति चोक्त्या लभते। तस्मादविभक्तार्जितत्वमात्रेण विभक्तमात्रन्तरस्य भवतीत्युक्तम्। तथा च गौतमः-

स्वयमार्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात्।¹⁴

नारदेनाप्युक्तम्-

वैद्योऽविद्याय नाकामो दद्यादंशं स्वतो धनात्।

पित्र्यं द्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितम्।¹⁵

पितरि मृते ज्येष्ठेनार्जितान्मैत्रादिकाद् भागो कनीयसो लभन्ते। यदि ते विद्वांस इत्यर्थः। अत एव पितृद्रव्याविरोधेनापि ज्येष्ठो विद्यादिना धनमर्जयति तत्र कनिष्ठानामपि भागो यदि ते विद्याभ्यासरता इति कल्पतरुमेधातिथिप्रभृतयः, एवं प्रागुक्तादेरपि सिद्धान्ते तदपवादो बोध्यते। यथा चोक्तम्-

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।

मैत्रमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च।¹⁶

व्यासेनोक्तम्-

लब्धधनाद्भागमंशं लभेतेत्यर्थः। यदि कथमप्यर्जितस्य विद्याधनस्य तत्त्वेनाविभाज्यत्वं मूलाभिमतं स्यात्तदा तद्वेतुकविभागकथनं नारदीये विरोधः क्रियते। तस्मान्तस्य स्वतो तादृशस्य विभाज्यत्वेऽविभाज्यत्वे किन्तु अविरोधेऽविभाज्यत्वं विरोधे विभाज्यत्वेन विरोधरूपमेव नारदेन हेतुत्वेनोक्तमिति सिद्धान्ते एकवाक्यता सिद्धा। मूलेऽपित्रीत्युपलक्षणम्। किन्तु यदि स्वभाविकी विद्याधनांशप्राप्तिर्नारदादिभिर्मता भवेत्तर्हि तस्य हेतुत्वोक्तिरनर्थका स्यात्। एवं च विद्याधनस्य यथा कथाञ्चिदर्जितस्य न स्वतो विभागार्हता। अन्यथा पितृद्रव्यविरोधेनार्जितस्याप्यविभाज्यत्वेऽत्राप्यविभाज्यत्वमेव उचितमिति विभागकथनस्यैवासङ्गतिरिति भावः। अत एव कात्यायनेनोक्तम्-

नाऽविद्यानां तु वैद्येन देयं विद्याधनात्किञ्चित्।

समविद्याधिकानां तु देयं वैद्येन तद्धनम्।³²

अयं च सिद्धान्तोऽविभाज्यत्वेन प्राप्तस्यापवादः। एवं च विद्याधनमन्यदपीति नारदादिविरोधो व्याख्यातुरिति बोध्यम्। तथा च पित्रादिद्रव्यविरोधे या विद्या तद्विन्ना लब्धा यत् प्राप्तं धनं तद्विद्याप्राप्तं धनं नान्यत् ईदृशमेवाविभाज्यम्, अतोऽन्यथा तु तद्विद्याधनमेव नेति तद्विभाज्यमेवेति भावः। अनुपघ्नन्नित्यत्र विभक्तविपरिणामेन तदनुपघ्नता यत् विद्याया रूपं लब्धं तत्पूर्वं चोभयमपि क्षयादेभ्यो न देयमित्यर्थेन पितृद्रव्यविनाशरूपविरोधाभावेन यद्विद्यालब्धं श्रमलब्धं च तदविभाज्यमिति सिद्धम्। मैत्रादिगणान्तर्गतविद्याधनस्य तथात्वात्तस्योपलक्षणत्वेन मैत्रदीनापि तथात्वमाविष्कृतमिति भावः।

मनुना-

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रेणेन यदुपार्जयेत्।

स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामो दातुमर्हति।³³

अत्र यत्किञ्चनमनोर्विपरीतं तस्यैव तात्पर्यम्। पितेव पालयेत्पुत्रानिति मानवात्पितापुत्रवद्भावे तद्व्येष्टधने कनिष्ठाधिकारः। पित्रार्जितेऽविदुषामपि ज्येष्ठार्जिते तु विदुषामेवेति विशेषः। 'इदं च पितरि प्रेते इति ज्येष्ठ' इति 'तात्पर्यम्' इति विद्यानुपालित इति चोक्त्या लभते। तस्मादविभक्तार्जितत्वमात्रेण विभक्तमात्रन्तरस्य भवतीत्युक्तम्। तथा च गौतमः-

स्वयमार्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात्।³⁴

नारदेनाप्युक्तम्-

वैद्योऽविद्याय नाकामो दद्यादंशं स्वतो धनात्।

पित्र्यं द्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितम्।³⁵

पितरि मृते ज्येष्ठेनार्जितान्मैत्रादिकाद् भागो कनीयसो लभन्ते। यदि ते विद्वांस इत्यर्थः। अत एव पितृद्रव्याविरोधेनापि ज्येष्ठो विद्यादिना धनमर्जयति तत्र कनिष्ठानामपि भागो यदि ते विद्याभ्यासरता इति कल्पतरुमेधातिथिप्रभृतयः, एवं प्रागुक्तादेरपि सिद्धान्ते तदपवादो बोध्यते। यथा चोक्तम्-

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।

मैत्रमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च।³⁶

व्यासेनोक्तम्-

क्रमागते गृहक्षेत्रे पितृपौत्राः समांशिनः।

पैतृके न विभागार्हाः सुताः पितुरनिच्छातः॥¹⁷

किञ्च कात्यायनेनाप्युक्तं यत्-

दृश्यमानं विभज्यते गृहं क्षेत्रं चतुष्पदम्॥

इति तयोर्भेदेनोपादानं कृतम्। एवं व्यासवाक्येऽप्युक्ते कृतमिति बोध्यम्। अविभाज्यमस्तीति च दर्शयन्ननुक्तवाज्येष्टशब्दस्योपयुक्तं लक्षार्थमाह।

पितृद्रव्ये इत्यादिनाऽविभाज्यं सर्वमुक्तमिति न्यूनतापरिहाराय विभाज्यप्रकरणे एवं वक्ष्यमाणमपि स्मरति पितृप्रसादति। अपरञ्चात्र विभाज्यत्वं व्याख्यात्रा विधिनिषेधाभ्यामुक्तम्। अत्राविभाज्यस्वरूपकथनं विधिः। विभाज्यत्वनिरासो निषेधः। तथा सत्युत्तरसङ्गत्यर्थमव्यवहितफलितं प्रागुक्तमुपसंहरति।

आधुनिकहिन्दुविध्यनुसारेणापि पैतृकधनस्यानुपघातेन यत् किञ्चिद्धनमर्जितं मित्रसकाशात्, शौर्यात्, श्वशुरगृहात्, अध्ययनात्, क्लिष्टशब्दव्याख्यानात्, शिष्यात्, शास्त्रार्थात्, आर्त्तिज्यात्, उत्तमवेदगानेन, स्वज्ञानप्रकटनेन, कस्यचित् सन्देहनिराकरणेन, पणपूर्वकं विद्यया द्यूतादिक्रीडया वान्यं विजित्य यल्लब्धं तत् सर्वमविभाज्यमिति।¹⁸ पुनश्च यदि सर्वकारपक्षतः साहाय्यरूपेण किञ्चिद्धनं केनचिल्लब्धं तद् यदि सर्वेषां परिवारवर्गाणां कृते नैव दत्तं स्यान्नहि तत् सर्वं स्वकीयं नेतरेर्विभाज्यं भवतीति।¹⁹

सन्दर्भसङ्केताः

1. मनु.-8/1
2. व्यवहारमयूख-पृ० 1
3. अमरकोषः पृ.-85
4. कात्यायनः
5. या. स्मृ. मिता. पृ. 265
6. ना. स्मृ.-4/13/1
7. मनु.-9/111
8. दा.भा. समीक्षा पृ.-2
9. दा.भा. -पृ.-2
10. याज्ञ.स्मृ.-2/118
11. तत्रैव-2/119
12. दा.भा. विमर्शः-पृ.-205
13. ना.स्मृ.-4/13/6
14. या.स्मृ.-2/119
15. मनु.स्मृ.-9/219
16. दा.भा. विमर्शः-पृ.-206